आरक्षित निर्णय

उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय, नैनीताल
रिट याचिका संख्या (एस/बी) 590/2018

डॉ. हरीश कुमार। .....याचिकाकर्ता

बनाम

डॉ. एस.सी. गैरोला व अन्य .....उत्तरदाता

श्री ज्ञानंत कुमार सिंह तथा श्री जॉयस इरविन, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता।

निर्णय सुरक्षित करने की दिनांक : 03.12.2018 निर्णय की दिनांकः 20.12.2018

संदर्भित मामलेः

1. 183 (2011) डीएलटी 495
2. 2013 (2) एडीजे 18
3. (2013) 16 एससीसी 147
4. (1999) 5 एससीसी 590
5. (1996) 4 एससीसी 411
6. (2001) 1 एससीसी 516
7. (1988) 3 एससीसी 26
8. ए.आई.आर 1997 एस. सी. 1125
9. (2012) 4 एससीसी 761
10. ए.आई.आर 1974 एस. सी. 2255
11. ए.आई.आर 1997 एस. सी 113
12. (1995) 1 एससीसी 399
13. (2012) 3 एससीसी 248
14. 2000 (2) एससीसी 367
15. (2001) 3 एससीसी 739
16. (2002) 1 एससीसी 766
17. (2001) 7 एससीसी 530
18. (2012) 4 एससीसी 307
19. (2014) 14 एससीसी 446
20. (1992) 4 एससीसी 697
21. (1969) 3 सभी ईआर 1062
22. ए.आई.आर 1969 एस.सी 189
23. (1994) 6 एससीसी 332
24. आकाशवाणी 2004 एस.सी 942
25. आकाशवाणी 2006 एस.सी. 1883
26. (1996) 10 एससीसी 102
27. (2007) 15 एससीसी 683

कोरमःमाननीय रमेश रंगनाथन, सी.जे.
माननीय रमेश चंद्र खुल्बे, जे.

1. यह रिट याचिका केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण देहरादून (संक्षेप में "अधिकरण" द्वारा) ओ.ए. संख्या 331/39/2015 में, अवमानना याचिका संख्या 331/00125/2017 में पारित आदेश, के विरूद्व भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 व 227 दोनों के अन्तर्गत दायर की गई है।
2. याचिकाकर्ता द्वारा अधिकरण के क्षेत्राधिकार का आहवान करते हुये तर्क दिया गया कि उत्तरदातागण द्वारा ओ0ए0 संख्या 331/39/2015 में पारित आदेश दिनांकित 05.05.2016 की अवहेलना की गई है। याचिकाकर्ता द्वारा पूर्व में अधिकरण के समक्ष प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम 1985 की धारा 19 के अन्तर्गत ओ0ए0न0 331/39/2015 दायर किया गया था। जिसमें आदेश दिनांकित 05.05.2016 में कहा गया कि आवेदक के ज्वाइन करने की दिनांक के पश्चात, केवल पद हेतु योग्यता मे परिवर्तन, मात्र डी0ओ0पी0टी0 और डी0एस0टी0 की सलाह का पालन करते हुये, उसकी पदोन्नति को निरस्त करने का आधार नही हो सकता है। सेवा नियमों में भूतकालीन संशोधन का कोई आदेश नही था। भारतीय वानिकी अनुसंधान एंव शिक्षा परिषद (जिसे इसके बाद आई0सी0एफ0आर0आई0 के रूप में सन्दर्भित किया गया है) के अपीलीय प्राधिकरण को चाहिये था कि वह ऐसे मामलों में अपने मस्तिक का प्रयोग करे जहॉ योग्यताओं में बदलाव किया गया, ताकि पूर्व से नियुक्त व्यक्तियों के अर्जित अधिकार सरंक्षित हो सके तथा वह प्रतिकूल रूप से प्रभावित ना हो। अग्रतर आवेदक का यह कहना सही था कि, वैज्ञानिक एफ. के रूप में उसकी इन–सीटू पदोन्नति की प्रार्थना पर उसे सुनवाई का अवसर प्राप्त नही हुआ।
3. तत्पश्चात अधिकरण ने टिप्पणी की :

   ".....उपरोक्त अभिलिखित कारणों से उत्तरदाता संख्या 4 का, आवेदक की वैज्ञानिक एफ. के पद पर पदोन्नति को निरस्त करने का आदेश, दिनांकित 05.09..2013 अपास्त किया जाता है। उत्तरदातागण को निर्देशित किया जाता है कि, आवेदक द्वारा उत्तरदाता संख्या 4 को दिये गये अभ्यावेदन पर विचार करने के पश्चात नया आदेश जारी करे। तत्पश्चात प्रक्रिया के नियमों का पालन करने के पश्चात भी यदि आवेदक, उत्तरदाता संख्या 4 द्वारा पारित आदेश से व्यथित हो तो वह आई0सी0एफ0आर0ई0 के अध्यक्ष के समक्ष अपील दायर करने का हकदार होगा जो आवेदक को व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर दिये जाने के पश्चात उसका निर्णय करेगा.....।

4. याचिकाकर्ता आई0सी0एफ0आर0ई0 के महानिदेशक के पास पहुंचा, जिन्होनें अपने आदेश दिनांकित 24.10.2016 में कहा कि, डी.ओ.पी.टी. की लचीली संशोधित पूरक योजना को पूरी तरह अपनाने के बाद, वह भारत सरकार के निर्देशों से बंधे हुये है तथा याचिकाकर्ता के पिछले अभ्यावेदन को सचिव, एम. ओ.ई.एफ.सी.सी. तथा अध्यक्ष, बी.ओ.जी., आई.सी.एफ.आर.ई. द्वारा तय किया गया है, याचिकाकर्ता को एफ.सी.एस. योजना के अन्तर्गत वैज्ञानिक ई के ग्रेड से वैज्ञानिक एफ0 मे इन–सीटू पदोन्नति नही दी जा सकती है। हालांकि यदि वह अभी भी असहमत है तो वह केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा ओ.ए. संख्या 331/39/2015 के आदेश दिनांकित 05.05.2016 में पारित निर्देशों के अनुसार सचिव, एम.ओ.ई.एफ.सी.सी. तथा अध्यक्ष बी.ओ.जी., आई.सी.एफ.आर.ई. को अपील कर सकते है।

5. आई.सी.एफ.आर.ई. के महानिदेशक द्वारा पारित आदेश दिनांकित 24.10.2016 से व्यथित होकर, आवेदक सचिव, पर्यावरण, वन तथा जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार (अपीलीय प्राधिकरण) के पास पहुंचा, जिनके द्वारा आदेश दिनांकित 19.06.2017 से महानिदेशक के आदेश दिनांकित 24.10.2016 के विरूद्व दायर अपील को खारिज कर दिया। याचिकाकर्ता द्वारा अपील प्राधिकरण (सचिव, पर्यावरण, वन तथा जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार)द्वारा पारित आदेश दिनांकित 19.06.2017 की वैधता को प्रश्नगत किया जाना नही चुना गया, परंतु अधिकरण के अवमानना क्षेत्राधिकार का आहवान करते हुये आरोप लगाया कि, उत्तरदातागण द्वारा जानबूझकर ओ.ए. संख्या 331/39/2015 में पारित आदेश दिनांकित 05.05.2016 की अवहेलना की गयी है।

6. अधिकरण के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा दिल्ली उच्च न्यायालय के खण्डपीठ के **भारत संघ व अन्य बनाम श्री छत्तरसाल सहरावत व अन्य** के निर्णय तथा इलाहाबाद उच्च न्यायालय के खण्डपीठ के, **महावीर प्रसाद वर्मा बनाम केन्द्रीय प्रशासनिक ट्रिब्यूनल लखनऊ व अन्य** के निर्णय पर निर्भर किया गया। अधिकरण के विचार में, उत्तरदातागण के विरूद्व जानबूझकर अवमानना का मामला नही बनता था तदनुसार अवमानना आवेदन खारिज कर दिया गया तथा नोटिस का उन्मोचन किया गया। उक्त से व्यथित होकर वर्तमान रिट याचिका दायर की गई।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ज्ञानेन्द्र कुमार सिंह द्वारा तर्क दिये गये कि चूंकि यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 व 227 के अन्तर्गत प्रशासनिक अधिकरण पर न्यायिक समीक्षा की शक्ति तथा न्यायिक अधिक्षण की शक्ति का प्रयोग करती है, इसलिये याचिकाकर्ता, अधिकरण द्वारा, अवमानना याचिका को खारिज करने के आदेश के विरूद्व इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार का आहवाहन कर सकता है। दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा **श्री छत्रसाल सहरावत** में इस तरह के चुनौती को सुनते हुये, भारत संघ की ओर से किये गये अभिवचन को खारिज किया था, कि न्यायालय अवमानना क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुये, अधिकरण द्वारा पारित आदेश के कार्यन्वयन की शुद्वता में नही जा सकती। इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा **महावीर प्रसाद वर्मा,** में अधिकरण के आदेश को दी गई चुनौती पर सुना गया था व निर्णित किया गया। इसी प्रकार यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अन्तर्गत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकता है, अधिकरण का दिनांकित 05.09.2013 के आदेश को अपास्त करने का आदेश जिसमें याचिकाकर्ता की पदोन्नति को निरस्त किया गया था, उत्तरदातागण के लिये आवश्यक बनाता था कि याचिकाकर्ता के पदोन्नति के मामले में पुनः विचार करे। अधिकरण द्वारा पारित आदेश महानिदेशक तथा सचिव, भारत सरकार को याचिकाकर्ता के पदोन्नति के मामले पर विचार करने हेतु बाध्य करता है तथा उनकी और से ऐसा करने में विफल रहना अधिकरण के आदेश का साशय व जानबूझकर किया गया उल्लघंन है।

8. विद्वान अधिवक्ता द्वारा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **भारत संघ और अन्य बनाम अशोक कुमार अग्रवाल** में पारित निर्णय (पैरा संख्या 30,31 व 33) तथा **होप प्लाटेंशन लिमेटेड बनाम तालूक लैण्ड बोर्ड पीरमेड व अन्य** में पारित निर्णय पर भी यह तर्क देते हुये निर्भर किया गया कि किसी भी व्यक्ति को दो बार, समान प्रकार के मुकदमों का सामना नही करना चाहिये ,क्योकि ऐसी प्रक्रिया निष्पक्ष खेल तथा न्याय के विचार के विपरीत होगी। उनके द्वारा यह भी तर्क दिये गये कि न्यायालय अवमानना, अधिनियम की धारा 11 तथा 19 के संयुक्त अध्ययन से अवमानना मामले को खारिज करने के अधिकरण के आदेश के विरूद्व, उच्च न्यायालय के समक्ष अपील का अधिकार प्राप्त है।

9. जिस सवाल के परीक्षण की आवश्यकता है, वह यह कि जहॉ अधिकरण अवमानना याचिका को खारिज कर देता है तथा उत्तरदातागण को यह अवधारित करते हुये आरोपमुक्त कर देता है कि जानबूझकर अवमानना का मामला नही बनता, क्या तत्पश्चात ओ.ए. के आवेदक के लिये खुला होगा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 व 227 के अन्तर्गत कार्यवाही में उक्त आदेश पर सवाल उठाये, जहॉ अवमानना का मामला खारिज कर दिया गया है तथा अवमानना करने वालो को आरोप मुक्त कर दिया गया था तथा क्या इस न्यायालय के लिये इस तरह के आदेश में हस्तक्षेप करना न्यायोचित होगा।

10. प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम 1985 (संक्षेप में"1985 अधिनियम") की धारा 17 अधिकरण को अवमानना को दण्डित करने की शक्ति प्रदान करती है तथा अधिकरण के पास अपनी अवमानना के सम्बन्ध में वही क्षेत्राधिकार शक्तियॉ तथा प्राधिकार होगें जो कि उच्च न्यायालय के पास है तथा प्रयोग कर सकते है तथा इस उद्वेश्य के लिये न्यायालय अवमानना अधिनियम 1971 के प्रावधान इस संशोधन के अधीन प्रभावी होगें कि उच्च न्यायालय को दिये गये संन्दर्भो को ऐसे अधिकरण आदि को सम्मिलित करते हुये के संन्दर्भ के रूप में माना जायेगा। 1985 अधिनियम की धारा 17 के अन्तर्गत अधिकरण को अपने आदेशो की अवमानना के लिये दण्डित करने की शक्ति प्रदान करते हुये संसंद द्वारा यह भी र्निधारित किया गया है कि केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, 1985 अधिनियम की धारा 17 के अन्तर्गत जिस शक्ति का प्रयोग कर सकती है, वह उच्च न्यायालय के समान ही होगी तथा इस उद्वेश्य के लिये न्यायालय अवमानना अधिनियम इस संशोधन के साथ प्रभावी होगा कि उसमें उच्च न्यायालय को दिये गये संन्दर्भो को अधिकरण को दिये गये सन्दर्भो के रूप में समझा जायेगा। इसलिये यह परीक्षण करने के लिये कि क्या याचिकाकर्ता अपनी इस दलील में उचित है या नही कि, अवमानना मामले को खारिज करने तथा यह अभिर्निधारित करने कि जानबूझकर अवमानना करने का कोई मामला नही बनता था, के अधिकरण द्वारा पारित आदेश के विरूद्व रिट याचिका पर विचार किया जाना चाहिये, न्यायालय की अवमानना अधिनियम के सुसंगत प्रावधानो पर विचार करना आवश्यक है।

11. न्यायालय अवमानना अधिनियम 1971 के खण्ड की धारा 2 (क), में "न्यायालय की अवमानना" को परिभाषित जिसका अर्थ सिविल अवमानना भी है धारा 2(ख) में सिविल अवमानना को परिभाषित है जिससे किसी न्यायालय के किसी

निर्णय ,डिक्री, निदेश ,आदेश, रिट या अन्य आदेशिका की जानबूझकर अवज्ञा करना या न्यायालय से किये गये किसी वचनबंध का जानबूझकर भंग करना अभिप्ररित है। धारा 12 में न्यायालय की अवमानना के लिये दण्ड का प्रावधान है उक्त की उपधारा(1) में प्रावधानित है कि इस अधिनियम या किसी अन्य विधि में अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय न्यायालय अवमान सादे कारावास से, जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो दो हजार रूपये तक का हो सकेगा, अथवा दोनो से दण्डित किया जा सकेगा। चूंकि 1985 अधिनियम की धारा 17 के अर्न्तगत अवमानना हेतु अधिकरण को प्रदत्त शक्ति उच्च न्यायालय के समान है तथा न्यायालय अवमानना अधिनियम के प्रावधान, 1985 अधिनियम की धारा 17 के अर्न्तगत अधिकरण पर लागू किये गये है ,न्यायालय अवमानना अधिनियम के उपरोक्त सभी प्रावधान भी अधिकरण को अपने अवमानना हेतु दण्डित किये जाने के क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में लागू होंगे।

12. एक अन्य प्रावधान जिसका बहुत महत्व है, वह है न्यायालय की अवमानना अधिनियम 1971 की धारा 19, जो "अपील " से सम्बन्धित है, उक्त की उपधारा (1)में प्रावधानित है कि, अवमान के लिये दण्डित करने की अपने अधिकारिता के प्रयोग में उच्च न्यायालय के किसी आदेश या विनिश्चय की साधिकार अपील – (क) यदि आदेश या विनिश्चय एकल न्यायाधीश का है तो कम से कम दो न्यायधीशो की न्यायपीठ को होगी एक के अन्तर्गत जहॉ आदेश या निर्णय एकल न्यायाधीश का है वहॉ न्यायालय के कम से कम दो न्यायाधीश की पीठ को होगी (ख)यदि आदेश या विनिश्चय न्यायपीठ का है तो उच्चतम न्यायालय को होगी। धारा 19 के अन्तर्गत अपील का अधिकार केवल अवमानना के लिये दण्डित करने के लिये अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुये उच्च न्यायालय के आदेश या निर्णय के खिलाफ प्रदान किया गया है और यदि **"उच्च न्यायालय"** शब्द को **"अधिकरण"** शब्द के साथ प्रतिस्थापित किया जाता है ,तो अपील का अधिकार केवल अवमानना के लिये दण्डित करने के लिये अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुये अधिकरण के आदेश व निर्णय के विरूद्व होगा।

13. प्रश्न, जिसका परीक्षण आवश्यक है वह यह है कि क्या अधिकरण के, उत्तरदातागण को यह अवधारित करते हुये कि, जानबूझकर अवमानना करने का कोई मामला नही बनता, उन्मोचित किये जाने तथा अवमानना मामले को

खारिज किये जाने के आदेश को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 व 227 के अन्तर्गत कार्यवाही के अर्न्तगत चुनोती दी जा सकती है ।

14. इस प्रश्न का परिक्षण करते समय, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अवमानना कार्यवाही दो पक्षों के बीच विवाद नहीं है। कार्यवाही, मुख्य रूप से, न्यायालय और उस व्यक्ति के बीच होती है जिस पर न्यायालय का अवमान करने का अभिकथित जाता है। वह व्यक्ति, जो अदालत को सूचित करता है या उसके ध्यान में लाता है कि इस तरह के अदालत की अवमानना की गई है, वह अभियोजक के पद पर नहीं खड़ा होता है। वह केवल यह सुनिश्चित करने में न्यायालय की सहायता करता है कि उसकी गरिमा और महिमा को बनाए रखा जाए और बरकरार रखा जाए। यह न्यायालय के लिए है जो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए यह निर्णय लेने के लिए कार्यवाही शुरू करता है कि क्या उस व्यक्ति को, जिसके विरूद्व ऐसी कार्यवाही शुरू की गई है, दंडित किया जाना चाहिए या आरोपमुक्त किया जाना चाहिए। **महाराष्ट्र राज्य बनाम महबूब एस. अल्लीभॉय तथा अन्य**, चूंकि याचिकाकर्ता केवल एक सूचना देने वाला है, जिसने न्यायालय के संज्ञान में लाया है कि उसके आदेशों का उल्लंघन किया गया है, इसलिए वह अधिकरण द्वारा अवमानकर्ताओं को आरोपमुक्त करने और उन्हें इस आधार पर दंडित करने से इनकार करने के आदेश से व्यथित व्यक्ति होने का दावा नहीं कर सकता है कि जानबूझकर अवमानना का कोई मामला नहीं बनाया गया है।

15. यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि एक अपील एक अधिनियम की रचना है।जब तक कोई अधिनियम अपील का प्रावधान नहीं करता है और उस आदेश को निर्दिष्ट नहीं करता है जिसके खिलाफ अपील दायर की जा सकती है, तब तक कोई अपील अधिकार स्वरूप या क्रम के रूप में दाखिल या सुनी नहीं जा सकती है यदि उच्च न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए किसी व्यक्ति को न्यायालय का अवमान के लिए दंडित करने का आदेश पारित करता है, केवल तब अधिनियम की धारा 19 की उप–धारा (1) के अन्तर्गत एक अपील पोषणीय होगी। धारा 19 (1) में 'कोई भी आदेश' या 'विनिश्चय' शब्द वैकल्पिक हैं, और दोनों ही मामलों में दंड की प्रकृति अवमानना के लिये होनी चाहिए।

(महबूब एस. अल्लीभॉय)।

16. 1985 के अधिनियम की धारा 17 संदर्भ द्वारा विधान का एक भाग है। न्यायालय अवमानना अधिनियम के प्रावधानों को, 1985 के अधिनियम के लेख से हटाया या शामिल नही किया गया है। (जैसा कि निगमन द्वारा विधान के मामले में है)। वह जहां हैं वहीं हैं, फिर भी 1985 अधिनियम की धारा 17 में किये गये संशोधन के अधीन अधिकरण के संदर्भ में न्यायालय की अवमानना अधिनियम के प्रावधान को इस तरह पढ़ा जाना चाहिए कि ''अधिकरण'' शब्द को ''उच्च न्यायालय'' शब्द जहॉ हो, के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जाए। न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 19 में अपील का प्रावधान है। इसके पाठ में भी, 1985 के अधिनियम की धारा 17 के आधार पर, 'उच्च न्यायालय' शब्द को 'अधिकरण' के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। **[टी. सुधाकर प्रसाद बनाम आन्ध्रप्रदेश राज्य व अन्य]** जब ऐसा पढ़ा जाता है, तो अवमानना अधिनियम की धारा 19 (1) (ख) सपठित 1985 के अधिनियम की धारा 17, अवमानना के लिए दंडित करने के अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, अधिकरण के किसी भी आदेश या विनिश्चय से, सर्वोच्च न्यायालय में एक अपील अधिकार के रूप में होगी।

17. धारा 19 (1) के अन्तर्गत अपील का अधिकार केवल अवमानना के लिए दंडित करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए पारित उच्च न्यायालय के किसी भी निर्णय या आदेश के विरूद्व उपलब्ध है। उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 215 से अवमानना के लिए दंडित करने का अधिकार क्षेत्र प्राप्त है। भारत के संविधान का अनुच्छेद 215 उच्च न्यायालयों को कोई नया अधिकार क्षेत्र या दर्जा प्रदान नहीं करता है। यह केवल इस बात को मान्यता देता है कि उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय हैं और अभिलेख न्यायालय होने के कारण, उन्हें स्वयं की अवमानना के लिए दंडित करने का अर्न्तनिहित क्षेत्राधिकार है। अवमानना के लिए दंडित करने की ऐसी अर्न्तनिहित शक्ति संक्षिप्त है। यह नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को छोड़कर किसी भी प्रक्रिया के नियम द्वारा शासित या सीमित नहीं है। अनुच्छेद 215 द्वारा अनुध्यात क्षेत्राधिकार अविच्छेद्य है।संविधान के अधीन किसी भी विधायी अधिनियम द्वारा इसे हटाया या निरस्त नहीं किया जा सकता है। न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 के प्रावधान इसके अतिरिक्त हैं ना कि संविधान के अनुच्छेद 215 के अल्पीकरण में। न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 के प्रावधानों का उपयोग उक्त अनुच्छेद द्वारा अनुध्यात अधिकार क्षेत्र के प्रयोग को सीमित या

विनियमित करने के लिए नहीं किया जा सकता है। (**टी. सुधाकर प्रसाद**)। उच्च न्यायालय जब अवमानना के लिये दण्ड देता है, वह जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 215 के अन्तर्गत उसे प्राप्त है अपने क्षेत्रााधिकार व शक्ति का प्रयोग करता है। जब वह अभिकथित अवमानकर्ता को कोई सजा नहीं देने का फैसला करता है, तो उच्च न्यायालय अवमानना के लिए दंडित करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र या शक्ति का प्रयोग नहीं करता है। उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार दंड देना है। जब उच्च न्यायालय द्वारा कोई सजा नहीं दी जाती है, तो यह मानना मुश्किल है कि उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 215 द्वारा प्रदत्त अपने अधिकार क्षेत्र या शक्ति का प्रयोग किया है।

[डी.एन. तनेजा बनाम भजन लाल; महबूब एस. अल्लीभॉय]

18. क्या उत्तरदातागण को अवमानना के लिये दण्डित करने के अधिकरण के आदेश के विरूद्व अपील की जा सकती है, सर्वोच्च न्यायालय ने टी.सुधाकर प्रसाद में कहा :

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संविधान पीठ ने अनुच्छेद 323–ए (2) (बी) या अनुच्छेद 323–बी (3) (डी) या अधिनियम की धारा 17 के प्रावधानों को संविधान के अधिकारातीत घोषित नहीं किया है। उच्च न्यायालय ने अपील के अधीन अपने फैसले में इस बात पर जोर दिया है कि अधिकरण की तुलना 'प्रथम बार के न्यायालय' से की गई है और फिर यह अभिनिर्धारित करने के लिए आगे बढ़ा है कि प्रशासनिक अधिकरणों की स्थिति को अदालत या उच्च न्यायालय के अधीनस्थ अधिकरणों के बराबर माना गया है और प्रशासनिक अधिकरणों द्वारा अपनी अवमानना की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र खो दिया गया था और उनके लिए उपलब्ध एकमात्र मार्ग या तो उच्च न्यायालय को संदर्भित करना था या भा.दं.सं. की धारा 193, 219 और 228 के अन्तर्गत परिवाद दायर करना था, जैसा कि अधिनियम की धारा 30 में प्रावधानित है। **उच्च न्यायालय इस तर्क पर आगे बढ़ा है कि अधिकरण को संविधान के अनुच्छेद 226/227 के उद्देश्य हेतु उच्च न्यायालय के अधीनस्थ माना गया है और इसके निर्णय संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय के न्यायिक पुर्नविलोकन क्षेत्राधिकार के अधीन हैं, अधिनियम की धारा 17 के अन्तर्गत अवमानना के लिए दंड देने वाले अधिकरण द्वारा पारित आदेश के विरूद्व सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर करने का अधिकार विफल हो गया था और इन दो**

आधारों पर अधिनियम की धारा 17 अव्यवहारिक और असंवैधानिक हो गई। हम इस न्यायालय के **उच्चतम न्यायालय बार एसोसिएशन बनाम भारत संघ, (1998)4 एस.सी.सी. 409, या एल.चंद्र कुमार, (1997) 3 एस. सी. सी. 261** या इस न्यायालय के कोई अन्य निर्णय से, इस तरह के निष्कर्ष या निष्कर्ष निकालने का कोई आधार नहीं पाते हैं। संविधान पीठ ने इतने शब्दों में कहा है कि अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालय को प्रदत्त क्षेत्राधिकार को किसी भी अदालत या अधिकरण को प्रदान करके नहीं हटाया जा सकता है, और अब तक उच्च न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट मामलों पर उच्च न्यायालय को अपवर्जित करने के लिए अधिकरणों को विधायी रूप से प्रदान किया गया क्षेत्राधिकार, अधिकरणों को उच्च न्यायालय के प्रतिस्थापित का दर्जा देने के बराबर नहीं है, लेकिन ऐसी क्षेत्राधिकार किसी भी न्यायालय या अधिकरण को अतिरिक्त या पूरक रूप से प्रदान करने में सक्षम है जो कि अनुच्छेद 323–ए और 323–बी के मद्देनजर संविधान की योजना के लिए एक अजनबी अवधारणा नहीं है। अनुच्छेद 323ए का खंड (2)(बी) विशेष रूप से संसद को अनुच्छेद 323–ए के तहत गठित प्रशासनिक अधिकरणों को अवमानना के लिए दंडित करने की शक्ति सहित अधिकार क्षेत्र और शक्तियों को निर्दिष्ट करने वाला कानून बनाने का अधिकार देता है। अधिनियम की धारा 17 अपनी विधायी पवित्रता इसी से प्राप्त करती है। **संविधान के अनुच्छेद 215 के अन्तर्गत अपनी अवमानना के लिए दंडित करने की उच्च न्यायालय की शक्ति बरकरार है, लेकिन अधिनियम की धारा 14 की उपधारा (1) के अन्तर्गत आनेवाले मामलों को सुनने और निर्णय करने की अधिकार क्षेत्र की शक्ति और अधिकार प्रशासनिक न्यायाधिकरणों को प्रदान किया गया है। उस सीमा तक उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार ले लिया गया तथा चूंकि वही क्षेत्राधिकार अपनी अवमान्ना के मामलो मे दण्ड देने का उच्च न्यायालय में निहित था अब अधिकरणों के क्षेत्राधिकार में आता है, यदि उन मामलों की सुनवाई जो उच्च न्यायालय में जारी रखी जाती अब अधिनियम की धारा 17 के तहत प्रशासनिक न्यायाधिकरणों को प्रदान कर दिया गया है। क्षेत्राधिकार न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 के प्रावधानों के साथ सपठित संविधान के अनुच्छेद 215 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय में निहित होने के समान है। धारा 17 को अधिनियमित करने की**

आवश्यकता, पहला, संदेह से बचने के लिए, और दूसरा, क्योंकि अधिकरण ''अभिलेख की अदालतें'' नहीं हैं, से उत्पन्न हुई। अधिनियम की धारा 17 के अन्तर्गत कार्यवाही करते समय अधिकरण एक अधिकरण बना रहता है और इसलिए संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के लिए उत्तरदायी होगा, लंबित कार्यवाही में हस्तक्षेप करने और अधिकरणों के अंतरिम या अंतर्वर्ती आदेशों को बाधित करने के लिए उच्च न्यायालय के विवेकाधिकार को नियंत्रित करने वाले आत्म–संयम के सुस्थापित नियमों के अधीन होगा। यद्यपि, अवमानना के लिए दंड देने वाला अधिकरण का कोई आदेश या निर्णय प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम की धारा 17 के साथ सपठित न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 19 में निहित विशिष्ट प्रावधान को ध्यान में रखते हुए अपील किए जाने वाले आदेश की तारीख से 60 दिनों के भीतर केवल उच्चतम न्यायालय में अपील करने योग्य होगा।

19. उच्चतम न्यायालय ने **एल.चंद्र कुमार बनाम भारत संघ और अन्य**, मामले में कहीं भी यह नहीं कहा है कि अवमानना करने वाले को दोषी ठहराने और अवमानना के लिए दंडित करने वाले अधिकरणों के आदेश एक वैधानिक अपील का उपाय उपलब्ध होने के बावजूद, संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालय की न्यायिक जांच के अधीन होंगे। 1985 के अधिनियम की धारा 14(1) के तहत आने वाले मामलों पर प्रशासनिक अधिकरण द्वारा पारित आदेशों और 1985 के अधिनियम की धारा 17 के साथ सपठित न्यायालय की अवमानना अधिनियम की धारा 19 के तहत अवमानना के लिए दंडित करने वाले आदेशों के बीच अंतर यह है: जैसा कि पूर्ववर्ती के खिलाफ सांविधिक रूप से अपील का कोई उपचार प्रदान नहीं किया गया है, लेकिन पश्चातवर्ती के खिलाफ, अदालत की अवमानना अधिनियम की धारा 19 द्वारा ही अपील का एक सांविधिक उपचार प्रदान किया गया है। अवमानना के लिए दंडित करने वाले अधिकरण के किसी भी आदेश या निर्णय के विरूद्व अदालत की अवमानना अधिनियम की धारा 19 के अन्तर्गत केवल उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। **[टी. सुधाकर प्रसाद; आर मोहजन तथा अन्य बनाम शेफाली सेनगुप्ता तथा अन्य]**

20. धारा 19 (**महबूब एस. अल्लीभोय**) की उपधारा(1) से स्पष्ट है कि अवमानना के लिए कार्यवाही को छोड़ने या अवमानना के लिए कार्यवाही शुरू करने से इनकार करने के आदेश के विरूद्व कोई अपील पोषणीय नहीं है। जहाँ न्यायालय अवमानना के लिए कार्यवाही शुरू करने से इनकार करता है, वह अवमानना के लिए दंडित करने के लिए क्षेत्राधिकार को मानने या प्रयोग करने से इनकार करता है, और इस तरह के निर्णय को अवमानना के लिए दंडित करने के अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में निर्णय के रूप में नहीं माना जा सकता है। इसलिए ऐसा निर्णय धारा 19 (1) के प्रारंभिक शब्दों के भीतर नहीं आएगा और उस प्रावधान के अन्तर्गत अधिकार के रूप में इसके विरूद्व कोई अपील नहीं होगी। **[बरदकांत मिश्रा बनाम श्री न्यायाधीश गतिकृष्ण मिश्रा उडीस के.सी.जे.महबूब एस.अलीभाय]**। जब निष्कर्ष यह होता है कि अभिकथित अवमानकर्ता ने जानबूझकर आदेश की अवज्ञा नहीं की, तो आदेश के उल्लंघन के लिए उत्तरदाता को दंडित करने का कोई आदेश नहीं है और तदनुसार, धारा 19 के तहत अपील नहीं होगी। **[जे0.एस परिहार बनाम गणपत दुग्गर और अन्य]**। जबकि अवमानना के लिए दंडित करने के लिए अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले अधिकरण के आदेश के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जाएगी, अवमानना के लिए दंडित करने के लिए क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार करने वाले अधिकरण के आदेश के विरूद्व कोई अपील नहीं होगी।

21. हालांकि यह स्पष्ट है कि 1985 के अधिनियम की धारा 17 (जो उन्हें उच्च न्यायालय के समान अवमानना की शक्ति प्रदान करता है) के अन्तर्गत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए उत्तरदातागण/अवमानकों को दंडित करने से इन्कार करने वाले प्रशासनिक अधिकरण द्वारा पारित आदेश के खिलाफ कोई अपील नहीं होगी, याचिकाकर्ताओं का तर्क होगा कि चूंकि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय द्वारा प्रयोग की गई न्यायिक पुर्नविलोकन की शक्ति संविधान के आधारभूत ढांचे का एक हिस्सा है, इसलिए अदालत की अवमानना अधिनियम या 1985 के अधिनियम की धारा 17 के प्रावधान, प्रशासनिक अधिकरण द्वारा उत्तरदातागण/अवमानकों को अवमानना के लिए दंडित करने से इन्कार करने के आदेश को निरस्त करने के रास्ते में नही आएंगे।

22. उच्च न्यायालय के क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार के भीतर काम करने वाले अधिकरणों और न्यायालय की अधीनस्थता या तो न्यायिक या प्रशासनिक या दोनों हो सकती है। संविधान के अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली अधीक्षण की शक्ति न्यायिक अधीक्षण है न कि प्रशासनिक अधीक्षण, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 235 के अन्तर्गत अधीनस्थ न्यायालयों पर उच्च न्यायालय में निहित है। **एल.चंद्र कुमार,** में संविधान पीठ इस सुझाव से सहमत नहीं थी कि अधिकरणों को उन उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षण क्षेत्राधिकार के अधीन किया जाना चाहिए जिनके क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार के भीतर वे आते हैं, क्योंकि संवैधानिक योजना के लिए यह आवश्यक नहीं है कि सभी र्निणायक निकाय, जो उच्च न्यायालय के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के भीतर आते हैं, उनके पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र के अधीन होने चाहिए, अर्थात यह अधिकरणों के प्रशासनिक कार्यो का पर्यवेक्षण है। **(टी. सुधाकर प्रसाद)**

23. प्रशासनिक न्यायाधिकरण वैकल्पिक संस्थागत तंत्र हैं जो उच्च न्यायालय से कम प्रभावी नहीं होने के लिए डिजाइन किए गए हैं, लेकिन साथ ही, संवैधानिक न्यायालय के न्यायिक पुर्नविलोकन क्षेत्राधिकार को नकारने हेतु नहीं हैं। प्रशासनिक न्यायाधिकरणों को उच्च न्यायालय के समकक्ष दर्जा नहीं दिया जाता है और न्यायिक पुर्नविलोकन या न्यायिक अधीक्षण के उद्देश्य से वे उच्च न्यायालय के अधीनस्थ होते हैं। उच्च न्यायालय संविधान के अंग हैं और उनके न्यायाधीश संविधान के तहत नियुक्त होने के कारण संवैधानिक पद पर हैं। अधीकरण अधिनियम के अंग हैं और उनके सदस्य सांविधिक रूप से नियुक्त किए जाते हैं और एक सांविधिक पद रखते हैं। **[टी.सुधाकर प्रसाद 6; उड़ीसा राज्य बनाम भगवान सारंगी]**। उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले अधिकरण में और उस अर्थ में उच्च न्यायालय के पूरक या अतिरिक्त होने में कोई अभिशाप नहीं है, लेकिन साथ ही उच्च न्यायालय के समकक्ष स्थिति का आनंद नहीं ले रहे, और उच्च न्यायालय की न्यायिक पुर्नविलोकन और न्यायिक अधीक्षण के अधीन भी है। **(टी. सुधाकर प्रसाद)**।

24. निसंदेह जबकि, भारत का संविधान के अनुच्छेद 226 तथा 227 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय की शक्तियाँ भारत के संविधान के आधारभूत ढांचे का एक हिस्सा है, **(एल.चंद्र कुमार)** और इस तरह की शक्ति को पूर्ण या अधीनस्थ कानून की तो बात ही छोड़िए, संविधान संशोधन द्वारा भी नकार या सीमित

नहीं किया जा सकता है। शक्ति के अस्तित्व और उसके प्रयोग के बीच के अंतर को ध्यान में रखा जाना चाहिए। केवल एक शक्ति का अस्तित्व शक्ति के प्रयोग को उचित नहीं ठहराता है। **[रतन बाई और एक अन्य बनाम राम दास और अन्य]**। यद्यपि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय को प्रदत्त न्यायिक पुर्नविलोकन की शक्तियाँ और भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उसे प्रदान की गई न्यायिक अधीक्षण की शक्ति, निस्संदेह, अत्यंत व्यापक है, लेकिन इसका प्रयोग स्वयं थोपी गई सीमाओं से सुरक्षित है। उच्च न्यायालय रिट याचिका को उसके गुण–दोष के आधार पर सुनने और न्याय निर्णय लेने के लिए अपीलीय न्यायालय के समान न्यायिक पुर्नविलोकन की अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करेगा। न्यायिक पुर्नविलोकन की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय प्रशासनिक अधिकरण के विचारों को प्रतिस्थापित नहीं करेगा कि वह किसी अलग निष्कर्ष पर पहुंचे या उसके गुण–दोष के आधार पर आदेश की जांच करे, और यह अभिनिर्धारित करे कि प्रशासनिक अधिकरण ने उत्तरदातागण–अवमानकर्ता प्रतियोगियों को दंडित नहीं करने में त्रुटि कारित की। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अन्तर्गत, अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय स्वयं सजा देने या अधिकरण को ऐसा करने का निर्देश देने का कार्य भी अपने ऊपर नहीं लेगा।

25. आम तौर पर उच्च न्यायालय, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत न्यायिक पुर्नविलोकन की अपनी शक्तियों और भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत न्यायिक अधीक्षण की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, अधिकरण के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करता, जो 1985 के अधिनियम की धारा 17 के तहत अपनी अवमानना क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, को यह अभिनिर्धारित करने के बाद कि उत्तरदातागण के विरूद्व जानबूझकर अवमानना का कोई मामला नहीं बनता, अवमाननाकर्ता को उन्मोचित करते हुये पारित किया गया था।

26. अब हम उन निर्णयों का परिक्षण करते है, जिन पर याचिकाकर्तागण द्वारा निर्भर किया गया है। **महावीर प्रसाद वर्मा** में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ कहा कि एक बार न्यायालय या अधिकरण द्वारा नोटिस जारी किए जाने के बाद, एक अधिकारी के बाद के स्थानांतरण के परिणामस्वरूप उसे अवमानना से मुक्त नहीं किया जाएगा। मौजूदा मामला अदालत की अवमानना

अधिनियम के तहत अवमानना करने वाले को इस आधार पर उन्मोचित करने का नहीं है कि उसका स्थानांतरण किया गया था, बल्कि यह अधिकरण के इस निर्णय के परिणामस्वरूप है कि जानबूझकर अवमानना का कोई मामला बनना नहीं पाया गया। इसलिये याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ज्ञानंत कुमार सिंह द्वारा **महावीर प्रसाद वर्मा** पर निर्भर करना अनुचित है।

27. दिल्ली उच्च न्यायालय ने **श्री छत्रसाल सहरावत**, में अभिनिर्धारित किया कि यदि अभिकथित अनुपालन आदेश स्वयं कहता है और दर्शाता है कि आदेश का पालन नहीं किया गया है, तो उत्तरदातागण को न्यायालय के मूल आदेश के अभिकथित अनुपालन में पारित आदेश को चुनौती देने के लिए एक मूल आवेदन दायर करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है और अधिकरण के मूल आदेश को एक कार्यालय ज्ञापन द्वारा मिटाया नहीं जा सकता है जिसमें आवेदकों को इस तरह के आदेश को चुनौती देने की आवश्यकता होती है। इस आदेश में पहले निर्दिष्ट किसी भी वैधानिक प्रावधान पर दिल्ली उच्च न्यायालय ने ध्यान नहीं दिया और न ही उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि 1985 के अधिनियम की धारा 17 के तहत अधिकरण द्वारा प्रयोग की जाने वाली अधिकार क्षेत्र, उच्च न्यायालय द्वारा अवमानना के लिए दंडित करने की शक्ति के समान है।

28. **एस. छत्रसाल सहरावत** , में दिल्ली उच्च न्यायालय ने याचिका को खारिज कर दिया था, जिसमें भारत सरकार की ओर से आग्रह किया गया था कि न्यायालय, अवमानना अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, अधिकरण द्वारा पहले पारित आदेश के कार्यान्वयन की शुद्धता में नहीं जा सकता है। इस प्रश्न की जांच करते समय, अवमानना के लिए दंडित करने के लिए अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाले न्यायालय/अधिकरण द्वारा जांच के दायरे पर ध्यान देना प्रासंगिक है। अवमानना अधिकार क्षेत्र का प्रयोग न्यायालय/न्यायाधिकरणों की महिमा और गरिमा को बनाए रखने के लिए किया जाता है, **[मुर्रे एंड कंपनी बनाम अशोक के. नेवतिया और एक अन्य; मृत्युंजय दास और अन्य बनाम सैयद हसीबुर रहमान और अन्य]** और अवमानना के लिए दंडित करने की शक्ति, जो विधि के न्यायालयों के हाथों में एक शक्तिशाली हथियार है, का उपयोग उचित सावधानी और सर्तकता के साथ तथा व्यापक सार्वजनिक हित में किया जाना चाहिए। (**मृत्युंजय दास)**। अवमानना अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कानून की महिमा और न्यायालय और अधिकरणों की गरिमा

को बनाए रखने के उद्देश्य से किया जाता है। न्यायालय का अवमान की कार्यवाही का उपयोग न्यायालय/न्यायाधिकरणों के डिक्री/आदेश को निष्पादित करने के लिए नहीं किया जा सकता है। अवमानना के लिए दंड देने के लिए अधिकार क्षेत्र की उपलब्धता न्यायिक मंच के कामकाज को प्रभावी बनाती है और परिहार पर इसके निवारक प्रभाव के कारण आदेशों को लागू करने में सक्षम बनाती है। **(टी. सुधाकर प्रसाद)**। अवमानना अधिकार क्षेत्र का प्रयोग आकस्मिक रूप से नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि केवल संयम से और बहुत योग्य मामलों में किया जाना चाहिए।इस कहावत को ध्यान में रखना उचित है ''एक विशालकाय की शक्ति होना अच्छा है, लेकिन हमेशा इसका उपयोग करना अच्छा नहीं है। **[सुरेश चंद्र पोद्दार बनाम धनी राम और अन्य]**।

29. चूंकि न्यायालय का अवमान अधिनियम के तहत एक कार्यवाही, प्रकृति में अर्ध–आपराधिक है, इसलिए आवश्यक सबूत का मानक आपराधिक कार्यवाही जैसा है, और उल्लंघन को उचित संदेह से परे स्थापित किया जाना चाहिए। **[मृत्युंजय दास; छोटू राम बनाम उर्वशी गुलाटी और एक अन्य]**। मामले को न्यायालय की अवमानना अधिनियम के दायरे में लाने के लिए, मामला केवल शंका और अनुमानों पर आधारित नहीं होना चाहिए, और एक पक्ष द्वारा जानबूझकर न्याय के प्रशासन में बाधा डालने का एक स्पष्ट मामला होना चाहिए। **[कंवर सिंह सैनी बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय]**। न्यायालय का आदेश, जिसके उल्लंघन का आरोप लगाया गया है, स्पष्ट, असंदिग्ध और सुबोध होना चाहिए, और इसकी अवज्ञा उस कार्य से सामने ही स्पष्ट होनी चाहिए जिसके लिये एक अवमानक को आरोपित करना अभिकथित है। न्यायालय के आदेश की शर्तों की व्याख्या, जिसके संबंध में अवज्ञा करना अभिकथित किया गया है, अवमानना के आरोप से निपटने के दौरान करना उचित नहीं होगा। यदि प्रारंभिक आदेश में स्पष्ट अस्पष्टता या स्पष्टता की कमी है, बाद के आदेश द्वारा न्यायालय के आदेश के सही अर्थ को उजागर करने हेतु इस तरह के आरोप को घर नहीं लाया जा सकता है। **[टी.सी. गुप्ता बनाम बिमल कुमार दत्ता और अन्य]**।

30. अवमानना अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में मात्र संभावनाओं पर, अवमानना के लिए सजा देना खतरनाक होगा। **[वी0जी0निगम और अन्य बनाम केदार नाथ**

गुप्ता और एक अन्य; मृत्युंजय दास; छोटू राम]। जहाँ न्यायालय के लिए दो समान रूप से सुसंगत संभावनाएँ खुली हैं, वहाँ यह मानना सही नहीं है कि अवमानना का अपराध उचित संदेह से परे साबित हुआ है। **[ब्रेम्बलवेल लिमिटेड में लॉर्ड डेनिंग; मृत्युंजय दास ; छोटू राम]**।

31. चूँकि अभियोग लगाने वाला व अभियोग का न्यायाधीश दोनों एक ही हैं, इसलिए न्यायालय/ अधिकरण को निर्णय की त्रुटियों और न्यायालय और अधिकरणों में अनुचित प्रथाओं से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों के लिए सावधानीपूर्वक अनुमति देने के साथ कार्य करना चाहिए। केवल तभी जब अपमानजनक आचरण का एक स्पष्ट मामला, जो अन्यथा समझाने योग्य नहीं है, बनता है, अवमानकर्ता को दंडित किया जाना चाहिए। अवमानना कानून के तहत सजा की मांग तब की जाती है जब चूक जानबूझकर और किसी के कर्तव्य की अवहेलना और अधिकार की अवहेलना में हो। एक अस्पष्ट मामले में कार्रवाई करना अवमानना के कानून को अन्य उपायों के लिए कर्तव्य बनाना है, और इसे प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। **[देबब्रत बंदोपाध्याय और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य; कंवर सिंह सैनी]।**

32. न्यायालय को स्वंय को संतुष्ट करना चाहिए कि फैसले का उल्लंघन साशय और जानबूझकर किया गया है। यद्यपि, एक डिक्री के निष्पादन के मामले में, निष्पादन न्यायालय एक डिक्री को निष्पादित करने के लिए बाध्य हो सकती है, भले ही परिणाम जो भी हों, एक अवमानना कार्यवाही में, अभिकथित अवमानक अदालत को संतुष्ट कर सकता है कि अवज्ञा कुछ मजबूर करने वाली परिस्थितियों में हुई है, और उस स्थिति में, उसे कोई सजा नहीं दी जा सकती है। **[नियाज मोहम्मद और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य; बैंक ऑफ बड़ौदा बनाम सद्रुद्दीन हसन दया और एक अन्य; रामा नारंग बनाम रमेश नारंग और एक अन्य ;और कंवर सिंह सैनी]**।

33. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, याचिकाकर्ता ने अधिकरण के अवमानना क्षेत्राधिकार का उपयोग करते हुए तर्क दिया कि, महानिदेशक, भारतीय वानिकी अनुसंधान और शिक्षा परिषद द्वारा दिनांक 24.10.2016 तथा सचिव, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा दिनांक 19.06.2017 को पारित आदेश, ओ.ए. संख्या 331/00039/2015 में प्रशासनिक अधिकरण द्वारा पारित आदेश का, साशय व जानबूझकर उल्लंघन करते हुए

पारित किए गए आदेश हैं। प्रशासनिक अधिकरण के आदेश के अनुपालन में संबंधित अधिकारियों द्वारा पारित आदेश की वैधता को आम तौर पर प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष स्वतंत्र कानूनी कार्यवाही में चुनौती दी जानी चाहिए, न कि अवमानना के लिए दंडित करने के लिए इसकी अधिकार क्षेत्र का आह्वान करके। **वी. कनकराजन बनाम महाप्रबंधक, दक्षिण पूर्वी रेलवे और अन्य,** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहाः

..... '' मौजूदा अपील का दायरा, जो अवमानना आवेदन को खारिज करने के खिलाफ निर्देशित है, बहुत सीमित है, हम अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए अन्य तर्कों में जाने के लिए इच्छुक नहीं हैं जो अधिकारियों द्वारा पारित कुछ संबंधित आदेशों की वैधता को चुनौती देते हैं। उच्च न्यायालय ने अवमानना आवेदन को खारिज करते हुए अपील के अधीन दिए गए फैसले में कहाः

''हमारे द्वारा यह निर्देश नहीं दिया गया था कि याचिकाकर्ता की पदोन्नति के सवाल पर केवल गोपनीय रिपोर्टों के आधार पर विचार किया जाना चाहिए। ऐसा हो सकता है कि गोपनीय रिपोर्ट याचिकाकर्ता के पक्ष में होने के प्रभाव से, प्रतिवादीओं को उसे पदोन्नति देनी चाहिए थी। लेकिन हम याचिकाकर्ता की पदोन्नति की सिफारिश नहीं करने में सक्षम प्राधिकारी की रिपोर्ट के गुण–दोष पर विचार नहीं कर रहे हैं। हम इस बात पर भी विचार करने में असमर्थ हैं कि क्या सक्षम प्राधिकारी का यह कहना उचित था कि याचिकाकर्ता नियमों के अनुसार पदोन्नति के लिए उपयुक्त उम्मीदवार नहीं है। **हमारी राय में याचिकाकर्ता के लिये उपचार, अवमानना के लिए एक आवेदन में नहीं है, बल्कि उस आदेश के खिलाफ एक अलग रिट याचिका में है जिसे मुख्य कार्मिक अधिकारी द्वारा दिनांक 18.05.1981 को उसे सूचित किया गया था।**

इन परिस्थितियों में, हम नहीं पाते कि याचिकाकर्ता उत्तरदातागण के विरूद्व अवमानना का मामला बनाने में समर्थ रहा है। हालाँकि, याचिकाकर्ता रिट आवेदन द्वारा मुख्य कार्मिक अधिकारी के उक्त आदेश के खिलाफ कदम उठाने के लिए स्वतंत्र होगा।''

हमारे विचार है में उच्च न्यायालय, किसी भी अवमानना के लिए आवेदन पर विचार करने से इन्कार करने में और अधिकारियों द्वारा पारित परिणामी आदेशों को चुनौती देने के लिए अलग–अलग

कार्यवाही द्वारा याचिकाकर्ता के अधिकार को सुरक्षित रखने मे सही था।.....''

34. **जे.एस.परिहार** में, उच्चतम न्यायालय ने व्यक्त किया किः

..... ''**..एक बार जब न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के आधार पर सरकार द्वारा एक आदेश पारित किया जाता है, तो एक उपयुक्त मंच में निवारण की मांग करने के लिए वाद हेतुक एक नया कारण उत्पन्न होता है। वरिष्ठता सूची तैयार करना गलत हो सकता है या सही हो सकता है या निर्देशों के अनुरूप हो सकता है या नहीं भी। लेकिन यह व्यथित पक्ष के लिए न्यायिक समीक्षा के अवसर का लाभ उठाने के लिए वाद हेतुक एक नया कारण होगा। लेकिन इसे आदेश का जानबूझकर उल्लंघन नहीं माना जा सकता है।** अवमानना कार्यवाही में न्यायिक समीक्षा का पुनः प्रयोग करने के बाद, विद्वान एकल न्यायाधीश द्व ारा वरिष्ठता सूची को फिर से तैयार करने के लिए एक नया निर्देश नहीं दिया जा सकता है। **दूसरे शब्दों में, विद्वान न्यायाधीश अवमानना कार्यवाही में गुण–दोष के आधार पर मामले पर विचार करने के लिए अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर रहा था। अधिनियम की धारा 12 के तहत इसकी अनुमति नहीं होगी।..''**

35. **पुनः भारत संघ और अन्य बनाम पी.एम.रंगास्वामी में सर्वोच्च न्यायालय ने कहाः**

''.....दिनांक 14.12.2005 को यू.पी.एस.सी. को विशेष प्रार्थना पर डी.पी.सी. के द्वारा, अधिकरण, चैन्नई बैंच के आदेश दिनांकित 21.09. 2005 में पारित निर्देशों पर समीक्षा की गयी। सरकार ने 30.12.2005 को प्रतिवादी के अभिवेदन से निपटने के लिए एक विस्तृत आदेश जारी किया और उसे सूचित किया कि उसके मामले पर अधिकरण के आदेश के संदर्भ में विचार किया गया है और इस तरह के विचार पर उसे एच.ए.जी. में पदोन्नति के लिए अनुशंसित नहीं किया गया है। 03.05.2006 को अधिकरण द्वारा याचिकाकर्ता को अवमानना में रखते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया गया था।

इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि 1997 से पहले वरिष्ठता सूची को कोई चुनौती नहीं थी। तारीख बदलने की चुनौती त्रेहन और नामपोरथिरी की तुलना में नहीं थी। जहाँ तक चतुर्थ श्रेणी में प्रवेश का

संबंध है, आवेदक त्रेहन और नामपुरथिरी से जूनियर था। ओ.ए. में चुनौती त्रेहान और नामपोरथिरी के संबंध में नहीं थी। जैसा कि उल्लेख किया गया है, 7.3.1997 से पहले कोई शिकायत नहीं थी। **यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि पदोन्नति के लिए कोई निर्देश नहीं था और केवल विचार के लिए था। इसलिए, किसी भी स्वचालित पदोन्नति का सवाल ही नहीं उठता है। अधिकरण ने कभी यह नहीं माना कि प्रतिवादी वरिष्ठता खोने के बावजूद पदोन्नति का हकदार था।** अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि वरिष्ठता खोने के बावजूद प्रतिवादी को न्यायाधिकरण के आदेश के आधार पर एच.ए.जी. में पदोन्नति के लिए विचार किया गया था। यह निर्णय लेते समय जिन मापदंडों पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या अवमानना की गई है, इस न्यायालय द्वारा कई मामलों में विचार किया गया है। उदाहरण के लिए **पृथ्वी नाथ राम बनाम झारखंड राज्य और अन्य। : ए.आई.आर. 2004 अन्य एस.सी. 4277, शिक्षा निदेशक, उत्तरांचल और अन्य। वी.वेद प्रकाश जोशी और अन्य। :2005 सी.आर.आई.एल.जे. 3731, दिलीप मित्रा बनाम स्वदेश चंद्र भडगा, छोटी राम बनाम उर्वशी गुलाटी और अन्य। :2001 सी.आर.आई.एल.जे. 4204 तथा सुरेश चंद्र पोद्दार बनाम धनी राम अन्य। :(2002) आईएलएलजे 822 एससी।**

उपरोक्त स्थिति में, अधिकरण यह अभिनिर्धारित करने में उचित नहीं था कि अवमानना की गई थी। यदि प्रतिवादी को कोई शिकायत है, तो उसके लिये उचित कार्यवाही में उसे चुनौती देना खुला है।..... ''

36. उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों में घोषित कानून के आलोक में, यह स्पष्ट है कि प्राधिकरण के आदेश के अनुपालन में अधिकारियों द्वारा पारित आदेश की वैधता पर, सामान्य रूप से, अवमानना कार्यवाही में सवाल उठाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि प्राधिकरणों द्वारा पारित आदेशों के गुण–दोष की जांच, अधिकरण के आदेश के उल्लंघन के लिए उत्तरदातागण को दंडित करने के लिए शुरू की गई अवमानना कार्यवाही में नहीं की जा सकती है।

37. अवमानना के लिए दंडित करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए अधिकरण से केवल एक ही प्रश्न का परिक्षण करने के लिए कहा जाएगा,

कि क्या अवमानकर्ताओं ने साशय और जानबूझकर इसके आदेशों का उल्लंघन किया है, और यदि ऐसा है, तो उन पर लगाए जाने वाले दंड की प्रकृति। इस तरह के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, अधिकरण गुण–दोष के आधार पर अधिकारियों द्वारा पारित आदेश की जांच नहीं करेगा। अधिकरण के आदेश के अनुपालन में पारित आदेश की वैधता पर सवाल उठाने के लिए याचिकाकर्ता के लिए उपलब्ध एकमात्र उपचार यह है कि, उसे अधिकरण के समक्ष स्वतंत्र कानूनी कार्यवाही में चुनौती दी जाए, न कि उसके अवमानना क्षेत्राधिकार का उपयोग करके।

38. याचिकाकर्ता की ओर से **अशोक कुमार अग्रवाल** मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भी निर्भर किया गया, जिसका कोई फायदा नहीं हुआ। **अशोक कुमार अग्रवाल** में एक अधिकारी को निलंबन के तहत रखने के आदेश की वैधता पर विचार किया गया और सर्वोच्च न्यायालय ने **होप प्लांटेशन लिमिटेड**. में अपने पहले के निर्णय पर निर्भर करते हुए कहा कि, जब कार्यवाही अंतिम हो जाती है, तो पक्ष निर्णय से बाध्य होते हैं, और उससे प्रश्नगत करने से प्रतिबंधित हो जाते हैं। न्यायालयों के अवलोकन को उसके संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए, न कि कानून के रूप में। उपरोक्त निर्णय में यह प्रश्न नही था कि, क्या प्रशासनिक अधिकरण द्वारा 1985 के अधिनियम की धारा 17 के तहत अवमानना के लिए दंडित करने की अपनी शक्ति का प्रयोग और अवमानना करने वाले को यह मानते हुए उन्मोचित किया कि जानबूझकर अवमानना का कोई मामला नहीं बनता को, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत कार्यवाही में उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जा सकती है।

39. याचिकाकर्ता को एक ही मुकदमे का दो बार सामना करने के लिए नहीं कहा जा रहा है। यदि याचिकाकर्ता का विचार है कि संबंधित अधिकारियों द्वारा पारित बाद का आदेश अवैध है, तो उपचार, उच्चतम न्यायालय द्वारा **वी. कनकराजन, जे.एस.परिहार तथा पी.एम.रंगास्वामी.** घोषित कानून के आलोक में एक भिन्न ओ.ए. दाखिल करना है। ऐसे मामलों में न तो अधिकरण की अवमानना अधिकार क्षेत्र का उपयोग किया जा सकता है और न ही अधिकरण को संबंधित अधिकारियों द्वारा उसके गुण–दोष के आधार पर पारित आदेश की वैधता की जांच के लिये कहा जा सकता है।

40. यद्यपि यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत जिस क्षेत्राधिकार का प्रयोग करती है, वह निस्संदेह व्यापक है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत न्यायिक अधीक्षण की अपनी शक्ति का उपयोग हमेशा सारवान न्याय प्रदान करने के लिए किया जा सकता है, इसका मतलब यह नहीं होगा कि उच्च न्यायालय स्वयं इस बात के परिक्षण का कार्य करेगा कि क्या अधिकरण, यह मानते हुए कि जानबूझकर अवमानना का कोई मामला नहीं पाया गया, उत्तरदातागण को आरोपमुक्त करने में उचित था। इसलिए, हम इस रिट याचिका पर विचार करने का कोई कारण नहीं पाते हैं। दिनांकित 24.10.2016 और 19.06.2016 के आदेशों को अधिकरण के समक्ष स्वतंत्र कानूनी कार्यवाही में पर प्रश्नगत करना याचिकाकर्ताओं पर छोडा जाना पर्याप्त होगा।

41. रिट याचिका विफल हो जाती है और तदनुसार परिस्थितियों के दृष्टिगत बिना हर्जे के खारिज की जाती है।

(रमेश चंद्र खुल्बे, जे.)
20.12.2018

(रमेश रंगनाथन, सी.जे.)
20.12.2018